प्रकाशन हेतु अनुमोदित

छत्तीसगढ उच्च न्यायालय, बिलासपुर

सिविल पुनरीक्षण क्रमांक 80/2005

परिवार सेवा संस्था

बनाम

पद्मावती दीक्षित

आदेश

निर्णय सूचीबद्ध करने हेतु नियत तिथि 20.07.2006

सही/–

सुनील कुमार सिन्हा

न्यायाधीश

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

<u>छत्तीसगढ उच्च न्यायालय, बिलासपुर</u>

<u>सिविल पुनरीक्षण क्रमांक 80/2005</u>

परिवार सेवा संस्था

बनाम

पद्मावती दीक्षित

उपस्थिति:

आवेदिका की ओर से : श्री प्रशांत मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता सहित श्री संजय के. अग्रवाल, अधिवक्ता

अनावेदक की ओर से : श्री आशीष श्रीवास्तव, अधिवक्ता सहित श्री आर. के. दुबे, अधिवक्ता

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

<u>**आदेश**</u>

(20.07.2006)

माननीय न्यायमूर्ति श्री सुनील कुमार सिन्हा

(1) यह पुनरीक्षण अभिधारी द्वारा म.प्र. (छ.ग.) आवास नियंत्रण अधिनियम, 1961 (जिसे आगे अधिनियम कहा जाएगा) की धारा 23-ड. के अंतर्गत प्रस्तुत की गई है। यह पुनरीक्षण भाडा नियंत्रण प्राधिकारण, रायपुर (छ.ग.) (जिसे आगे आरसीए कहा जाएगा) द्वारा प्रकरण क्रमांक 6/90(8) 2000-2001 में पारित आदेश दिनांक 16.5.2005 के विरुद्ध प्रस्तुत किया गया है। उक्त आदेश द्वारा, उपरोक्त प्राधिकारी ने भू-स्वामिनी द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 23-क(ख) के अंतर्गत "अपने प्राप्तवय पुत्र के होटल व्यवसाय (रेस्टोरेंट) शुरू करने के उद्देश्य से "वास्तविक आवश्यकता" के आधार पर प्रस्तुत बेदखली के आवेदन को स्वीकार कर लिया है।

(2) प्रकरण के तथ्य यह हैं कि भू-स्वामिनी ने दिनांक 19.4.2001 को आरसीए के समक्ष उपरोक्त आवेदन प्रस्तुत किया था, जिसमें अन्य बातों के साथ-साथ यह अभिवचन प्रस्तुत किया गया था कि वह आवेदन के साथ संलग्न मानचित्र में वर्णित गैर-आवासिक किराए के आवास की स्वामी है और उक्त आवास अनावेदक, याचिकाकर्ता के अधिभोग में है, जो 7700 रुपये प्रति माह किराया दे रहा है। उसने आगे तर्क दिया कि रायपुर के बैजनाथपारा स्थित दीक्षित कॉम्प्लेक्स की पहली मंजिल पर स्थित आवास की उसे अपने बड़े पुत्र अमिताभ दीक्षित के होटल व्यवसाय (रेस्टोरेंट) को शुरू करने के लिए वास्तविक

रूप से आवश्यकता है। उसने आगे तर्क दिया कि यह आवास उक्त व्यवसाय के लिए उपयुक्त है और इस तरह का व्यवसाय शुरू करने के लिए रायपुर टाउनशिप में आवेदिका के पास कोई उचित रूप से उपयुक्त वैकल्पिक आवास नहीं है। उसने यह भी तर्क दिया कि दिनांक 18.11.2000 को उसकी वास्तविक आवश्यकता दर्शाते हुए एक नोटिस पंजीकृत डाक द्वारा याचिकाकर्ता/अनावेदक को भेजा गया था, जिसके तहत दिनांक 31.1.2001 से किरायेदारी समाप्त कर दी गई थी। चूँकि उपरोक्त नोटिस द्वारा किरायेदारी समाप्त होने के बाद भी कब्ज़ा नहीं दिया गया, इसलिए अनावेदक के विरुद्ध बेदखली का आदेश पारित किया जाए।

अभिधारी ने बचाव की अनुमति प्राप्त करने के बाद आवेदिका के तर्कों को नकारते हुए अपना लिखित कथन प्रस्तुत किया। यह तर्क दिया गया कि आवेदिका के पति ने उन्हें यह परिसर मासिक किराए पर दिया था और उनके बीच यह सहमति हुई थी कि हर तीन वर्ष के बाद मासिक किराए में 15% की वृद्धि होगी और किरायेदारी जारी रहेगी। इसके अलावा उनके बीच किसी अन्य शर्त पर सहमति नहीं हुई थी। यह भी तर्क दिया गया कि चूंकि दिसंबर 1999 में वास्तविक भू–स्वामी की मृत्यु के बाद आवेदिका ने आवास को अगले तीन वर्षों के लिए 7700 रुपये मासिक किराया देने पर भी सहमति जताई थी, इसलिए वह उक्त अवधि से पहले बेदखली का दावा नहीं कर सकती। उन्होने आवेदिका द्वारा इस परिसर की वास्तविक आवश्यकता के बारे में विशेष रूप से इनकार किया। उन्होंने आगे तर्क दिया कि चूंकि आवेदिका किराया बढ़ाना चाहती है और उसने उन्हें परिसर बेचने हेतु प्रस्ताव दिया था, इसलिए आवेदिका की वास्तविक आवश्यकता का प्रश्न ही नहीं उठता।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(3) विद्वान आरसीए ने, विवाद्यकों को विरचित करने और पक्षकारों के साक्ष्य दर्ज करने के बाद, आवेदन स्वीकार कर लिया और उक्त अधिनियम की धारा 23–क(ख) के अंतर्गत अनावेदक को बेदखल करने का निर्देश दिया। आरसीए द्वारा पारित इस बेदखली आदेश के विरुद्ध, अभिधारी ने यह पुनरीक्षण याचिका प्रस्तुत की है।

(4) तर्कों के दौरान याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि भू–स्वामिनी ने यह साबित नहीं किया है कि वह परिसर की पूर्ण स्वामिनी थी ताकि अधिनियम की धारा 23–ड के तहत याचिका यथावत रखी जा सके। उसने यह भी साबित नहीं किया है कि उसे अपने पुत्र के रेस्तरां व्यवसाय को शुरू करने के लिए परिसर की वास्तविक रूप से आवश्यकता है। उन्होंने आगे कहा कि यह भी साबित नहीं हुआ है कि आवेदिका के पास अपने पुत्र के उक्त व्यवसाय को शुरू करने के लिए कोई उचित रूप से उपयुक्त वैकल्पिक गैर–आवासिक आवास नहीं था। उन्होंने यह भी कहा कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता है कि आरसीए ने संविधिक आवश्यकताओं पर विचार नहीं किया है और वास्तविक आवश्यकता का सतही रूप से निष्कर्ष दर्ज किया है। उन्होंने यह भी कहा कि

आरसीए ने अधिनियम की धारा 23–छ के आज्ञापक प्रावधानों पर ध्यान नहीं दिया और इस संबंध में एक शब्द भी नहीं लिखा है। इन आधारों पर उन्होंने आदेश को अपास्त करने की प्रार्थना की।

(5) इसके विपरीत, उत्तरवादी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क प्रस्तुत किया कि अनावेदक ने स्वीकार किया है कि आवेदिका भू–स्वामिनी और वह किराएदार परिसर की स्वामिनी हैं। उन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि आवेदिका ने वास्तविक आवश्यकता के तथ्य को सिद्ध कर दिया है और इस संबंध में निष्कर्ष अभिलेखों में उपलब्ध साक्ष्यों द्वारा समर्थित है। उनका तर्क था कि चूँकि आवेदिका ने वास्तविक आवश्यकता के तथ्य और उचित रूप से उपयुक्त वैकल्पिक गैर–आवासिक आवास की अनुपलब्धता के तथ्य को सिद्ध कर दिया है, इसलिए आर.सी.ए. द्वारा सिद्ध तथ्यों पर पारित आदेश में अधिनियम की धारा 23–ड के अंतर्गत सीमित क्षेत्राधिकार में इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता।

(6) मैंने पक्षकारों के विद्वान अधिवक्ताओं को विस्तार से सुना है तथा आर.सी.ए. के अभिलेखों का भी अवलोकन किया है।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(7) अधिनियम की धारा 23–ड के तहत पुनरीक्षण पर विचार करने के लिए उच्च न्यायालय का दायरा सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 115 के तहत प्रयोग की जा सकने वाली पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार से थोड़ा अधिक है और विधि के तहत उच्च न्यायालय द्वारा प्रयोग की जा सकने वाली अपीलीय शक्तियों से कम है। धारा 23–ई के तहत शक्तियों का प्रयोग करने वाला उच्च न्यायालय भाडा नियंत्रण प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का हकदार है जब न्यायालय को पता चलता है कि भाडा नियंत्रण प्राधिकारी ने साक्ष्य का गलत तरीके से अवलोकन किया है, साक्ष्य पर विचार करने की अनदेखी की है और इस तरह विकृत निष्कर्ष दर्ज किया है या विधि को अनुचित तरीके से उद्धृत करके अवैधता की है या संबंधित प्रकरण में लागू विधि को गलत तरीके से प्रस्तुत किया है (कृपया 2001 (2) एम.पी.एल.जे. 349–धन्नालाल पिता मन्नालाल–बनाम– कलावती बाई और अन्य देखें)। अतः, धारा 23–ड के अंतर्गत, यह न्यायालय उपर्युक्त आधारों पर निष्कर्ष की विकृतता की जाँच करने का हकदार है और यदि न्यायालय को ऐसा प्रतीत होता है कि निष्कर्ष वास्तव में विकृत हैं और आदेश अभिलेख में उपलब्ध साक्ष्यों पर आधारित नहीं है, तो उसे उक्त पुनरीक्षण क्षेत्राधिकार के अंतर्गत अपास्त किया जा सकता है। अतः, परीक्षण के सीमित दायरे के संबंध में उत्तरवादी द्वारा उठाई गई आपत्ति को यथावत नहीं रखा जा सकता है और जांच का दायरा ऊपर उल्लिखित विधि के अधीन होगा।

(8) गुण–दोष के आधार पर, सबसे पहले, मैं परिसर के स्वामित्व के आधार को लेता हूं। इस संबंध में विधि की आवश्यकता को **शीला और अन्य बनाम फर्म प्रहलाद राय प्रेम प्रकाश, जे.टी. 2002 (2) एस.सी. 536** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा निराकरण किया गया है। उपरोक्त निर्णय के कंडिका 10 में अभिनिर्धारित किया गया है कि, धारा 12(1) के खंड (च) के तहत वास्तविक आवश्यकता के

आधार पर बेदखली की मांग करते समय, भू–स्वामी को न केवल यह आरोप लगाना और साबित करना आवश्यक है कि वह एक "भू–स्वामी" है, बल्कि यह भी कि वह परिसर का "स्वामी" है। अधिनियम की धारा 2 के खंड (ख) और (झ) में दिये गये "भू–स्वामी" और "अभिधारी" की परिभाषा यह स्पष्ट करती है कि अधिनियम के तहत भू–स्वामित्व हक की अवधारणा स्वामित्व से अलग है। एक व्यक्ति "भू–स्वामी" हो सकता है, हालांकि वह परिसर का "स्वामी" नहीं है। भू–स्वामी के स्वामित्व का निर्धारण करने वाला कारक किसी भी आवास का किराया प्राप्त करने या प्राप्त करने का उसका अधिकार है। किराया प्राप्त करने का ऐसा अधिकार भू–स्वामी की ओर से या किसी अन्य व्यक्ति के लाभ के लिए हो सकता है। भू–स्वामी की परिभाषा में एक ट्रस्टी, एक संरक्षक और एक प्रापक भी सम्मिलित हैं। ऐसा भू–स्वामी अधिनियम की धारा 12(1) के दायरे में आने वाले ऐसे एक या अधिक आधारों पर अभिधारी को बेदखल करने का हकदार होगा, जिनके लिए भू–स्वामी का स्वामी होना भी आवश्यक नहीं है ताकि वह बेदखली का दावा सफलतापूर्वक बनाए रखने का हकदार हो। धारा 12(1) का खंड (च) एक स्वामी–भू–स्वामी द्वारा बेदखली का दावा करने की परिकल्पना करता है, न कि केवल एक भू–स्वामी द्वारा। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि वह यह जोड़ना चाह सकता है कि भाडा नियंत्रण विधि द्वारा शासित भू–स्वामी–अभिधारी मुकदमे में स्वामित्व की अवधारणा को छोटे वाद से अलग किया जाना चाहिए। स्वामित्व एक सापेक्ष शब्द है जिसका अर्थ उस संदर्भ पर निर्भर करता है जिसमें इसका उपयोग किया जाता है। सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया है कि भाडा नियंत्रण विधायन में भू–स्वामी को स्वामी कहा जा सकता है यदि वह अपने विधिक अधिकार के तहत किसी अन्य के लिए या उसकी ओर से अभिधारी को बेदखल करने और फिर परिसर को अपने पास रखने, नियंत्रित करने, रखने और उपयोग करने का हकदार हो। भू – स्वामी अभिधारी मुकदमेबाजी में स्वामित्व के साक्ष्य के रूप में जो पर्याप्त हो सकता है और अच्छा हो सकता है वह संभवतः एक स्वत्व के वाद में स्वामित्व के लिए दावे को सफलतापूर्वक बनाए रखने के लिए पर्याप्त हो सकता है या नहीं भी हो सकता है। सर्वोच्च न्यायालय ने इस कंडिका में **एम.एम. कासिम–बनाम– मनोहरलाल शर्मा (1981) 3 एससीसी 36 और दिलबागराय पंजाबी–बनाम– शरद चंद्र (1988) सप्लीमेंट एससीसी 710** के प्रकरण में दिए गए दो निर्णयों का संदर्भ लिया। यह सब सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अधिनियम की धारा 12(1)(च) के तहत एक प्रकरण में कहा गया है जो उक्त अधिनियम की धारा 23–क(ख) के समरूप है।

(9) अब प्रकरण में इसकी जाँच की जानी है कि क्या उत्तरवादी/आवेदिका ने यह सिद्ध किया है कि वह परिसर की स्वामी थी ताकि उपरोक्त अधिनियम की धारा 23– क(ख के अंतर्गत दावा यथावत रखा जा सके। यदि हम पक्षकारों के तर्कों पर गौर करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि लिखित कथन में ही, एक जगह नहीं बल्कि कई जगहों पर अनावेदक द्वारा यह तर्क दिया गया है कि आवेदिका के पति, अर्थात् स्वर्गीय सीता चरण दीक्षित, की मृत्यु के बाद, यह आवेदिका भी उनकी संपत्ति की उत्तराधिकारी बनी। लिखित

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

कथन के कंडिका 2 में यह विशेष रूप से स्वीकार किया गया है कि आवेदिका इस आवास की स्वामिनी थी और उसने अभिधारी के साथ करार किया है। यहां तक कि यह मानते हुए भी कि वह अपने पति की मृत्यु के बाद सह–स्वामी के रूप में परिसर की उत्तराधिकारी बनी, सर्वोच्च न्यायालय का यह सुस्थापित दृष्टिकोण है कि सह–स्वामियों में से कोई एक अकेले और अपने अधिकार से अभिधारी को बेदखल करने के लिए वाद प्रस्तुत कर सकता है और अभिधारी के लिए इस आधार पर वाद की पोषणीयता पर प्रश्न उठाना कोई बचाव नहीं है कि अन्य सह–स्वामी वाद में पक्षकार के रूप में शामिल नहीं थे। जब बेदखली की कार्यवाही का विषय बनने वाली संपत्ति कई स्वामियों के स्वामित्व में होती है, तो प्रत्येक सह–स्वामी अन्य लोगों के साथ संयुक्त संपत्ति के हर हिस्से और प्रत्येक अंश का स्वामी होता है और यह नहीं कहा जा सकता है कि वह संपत्ति का केवल आंशिक स्वामी या प्रभागी स्वामी है जब तक कि संपत्ति का विभाजन नहीं हुआ है। वह अकेले अन्य सह–स्वामियों के साथ शामिल हुए बिना अभिधारी को बेदखल करने के लिए वाद चला सकता है यदि ऐसे अन्य सह–स्वामी आपत्ति नहीं करते हैं। कृपया **(2002) 6 एससीसी 16 (धन्नालाल बनाम कलावतीबाल और अन्य)** देखें। इसलिए, यह स्पष्ट है कि यदि आवेदिका कम से कम संपत्ति की सह–स्वामी है, तो वह अधिनियम की धारा 23–क(ख) के तहत दावा कर सकती है। इस प्रकरण में, कम से कम आवेदिका का सह–स्वामित्व विवादित नहीं है। अतः, यह माना जाता है कि आवेदिका द्वारा आर.सी.ए. के समक्ष प्रस्तुत की गई कार्यवाही पोषणीय थी और याचिकाकर्ता के अधिवक्ता द्वारा प्रस्तुत यह तर्क कि कार्यवाही स्वयं पोषणीय नहीं थी, को स्थिर नहीं रखा जा सकता।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(10) अब मैं "वास्तविक आवश्यकता" के विचाद्यक पर विचार करता हूँ। सर्वोच्च न्यायालय ने श्री **सरूप गुप्ता बनाम डॉ. महेश चंद गुप्ता, (1999) 6 एस.सी.सी. 222** के प्रकरण में यह अभिनिर्धारित किया है कि "सद्भावनापूर्ण" या "वास्तविकतापूर्ण" शब्द मन की एक अवस्था को दर्शाता है। आवश्यकता केवल इच्छा नहीं है। "आवश्यकता" से अभिप्रायित परिमाण या तीव्रता केवल इच्छा से कहीं अधिक है। "वास्तविक आवश्यकता" वाक्यांश विधायी आशय का सूचक है कि केवल इच्छा, जो सनक या कल्पना का परिणाम है, भाडा नियंत्रण विधायन द्वारा संज्ञान में नहीं ली जाती है। अभिधारी को बेदखल करने के केवल दिखावा या बहाने के विपरीत, एक सच्ची, ईमानदार इच्छा का परिणाम महसूस की गई आवश्यकता के अर्थ में एक आवश्यकता, भू–स्वामी द्वारा अपने या परिवार के किसी सदस्य के लिए परिसर पर अधिभोग करने का दावा करने पर उसे अभिधारी को बेदखल करने का अधिकार होगा। सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि इस दृष्टिकोण से देखा जाए तो भू–स्वामी की आवश्यकता और उसकी वास्तविकता को उजागर करने वाले तथ्यों और परिस्थितियों का कोई भी विन्यास न्यायालय द्वारा वस्तुनिष्ठ निर्धारण की कसौटी पर सफलतापूर्वक खरा उतरने में सक्षम होगा। तथ्यों के निर्णायक को स्वयं को भू–स्वामी की कुर्सी पर बैठकर स्वयं से यह प्रश्न पूछना चाहिए कि क्या भू–स्वामी द्वारा प्रमाणित तथ्यों के आधार पर परिसर में रहने की आवश्यकता को स्वाभाविक, वास्तविक, सत्य और सद्भावपूर्ण कहा जा सकता है।

यदि उत्तर हाँ है, तो आवश्यकता वास्तविक है। भू–स्वामी की ओर से तर्क दिया गया कि आवश्यकता को साबित करने में विफलता, या, किसी दिए गए प्रकरण में, अभिधारी द्वारा अभिलेख में उपलब्ध सकारात्मक तथ्यों ने न्यायालय को यह निष्कर्ष निकालने में सक्षम बनाया कि वास्तविकता इसके विपरीत थी और भू–स्वामी केवल अभिधारी से छुटकारा पाने के लिए एक दिखावा करने का प्रयास कर रहा था, न्यायालय को निश्चित रूप से भू–स्वामी को अपनी न्यायिक सहायता से इनकार करने के लिए राजी करने के लिए पर्याप्त होगा।

(11) राम दास बनाम ईश्वर चंदर, (1988) 3 एससीसी 131 प्रकरण में दिए गए निर्णय का हवाला देते हुए, सर्वोच्च न्यायालय ने बलदेव सिंह बाजवा बनाम मोनीश सैनी, जेटी 2005 (12) एससी 442 प्रकरण में पुनः यह अभिनिर्धारित किया कि "वास्तविक आवश्यकता" या "वास्तविक आवश्यकता" या "सद्भावनापूर्वक अपेक्षा" जैसे वाक्यांश लगभग सभी भाडा नियंत्रण अधिनियमों में उस विधायी आशय के साथ आते हैं जिस पर विभिन्न उच्च न्यायालयों और सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अनगिनत बार विचार किया गया है और उसे प्रदर्शित किया गया है। राम दास प्रकरण (पूर्वोक्त) में कहा गया है कि वास्तविक आवश्यकता वास्तविक और सत्य होनी चाहिए, जिसकी कल्पना सद्भावनापूर्वक की गई हो। इसने यह भी संकेत दिया कि भू–स्वामी की कब्जे की इच्छा, चाहे वह अन्यथा कितनी भी ईमानदार क्यों न हो, उसमें अनिवार्य रूप से एक व्यक्तिपरक तत्व होता है, और उस इच्छा को कानून में 'आवश्यकता' बनने के लिए एक 'आवश्यकता' का वस्तुनिष्ठ तत्व होना चाहिए, जिसका निर्णय सभी संबंधित परिस्थितियों को ध्यान में रखकर ही किया जा सकता है, ताकि अभिधारी को दी गई सुरक्षा भ्रामक या कम न हो जाए।

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(12) शिव सरूप गुप्ता प्रकरण (पूर्वोक्त) में, सर्वोच्च न्यायालय ने "सद्भावपूर्ण" वाक्यांश के विभिन्न शब्दकोशीय अर्थों का वर्णन किया। चैंबर्स 20th सेंचुरी डिक्शनरी में बोना फाइड का अर्थ "सद्भावनापूर्वक: वास्तविक" है। "वास्तविक" शब्द का अर्थ है "स्वाभाविक: बनावटी नहीं: वास्तविक: शुद्ध: ईमानदार"। विधिक शब्दकोश में, मोज़ले और व्हिटली ने सद्भावना को "सद्भावना, कपट या छल के बिना" के रूप में परिभाषित किया है। आवेदिका ने इस प्रकरण में दो साक्षियों का परीक्षण कराया है, अर्थात् श्रीमती कविता दीक्षित, आवेदिका की पुत्रवधू और मुख्तारनामे धारक, और श्री अमिताभ दीक्षित, आवेदिका का पुत्र। यह पुत्रवधू के साक्ष्य में आता है कि जिस पुत्र के लिए बेदखली की मांग की जा रही है, उसने 8–9 वर्ष पहले अपनी पढ़ाई पूरी कर ली है और उसने उक्त तिथि से व्यवसाय करने का फैसला किया था। इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षण (पृष्ठ 2) में स्वीकार किया है कि प्र.डी–1 (कथन पत्रक में गलती से प्र.पी.1 के रूप में लिखा गया) के रूप में पत्र आवेदिका द्वारा किराया बढ़ाने के लिए अनावेदक को लिखा गया था। वह पृष्ठ 1 में यह भी स्वीकार करती है कि प्र.डी 3 दिनांक 17.5.1997 पक्षकारों के बीच करार हुआ। तीसरा पत्र, जिसे प्र.डी–4 के रूप में चिह्नित किया गया है और जिसे आवेदिका द्वारा अनावेदक को भेजा जाना

स्वीकार किया गया है, में मैरी स्टोन क्लिनिक की भूमि को 1500/– रुपये प्रति वर्ग फीट की दर से बेचने के विषय में उल्लेख है।

प्रतिपरीक्षण में इस साक्षी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि आवेदिका द्वारा वादग्रस्त भूमि को 1500 रुपये प्रति वर्ग फीट की दर से बेचने का प्रस्ताव था। साक्षी अ.सा. 1 की स्वीकारोक्ति निम्नलिखित रूप में दर्ज की गई है।

"यह कहना सही है कि उपरोक्त विक्रय हेतु प्रस्ताव में आवेदिका ने वादग्रस्त स्थान का 1500–00 रुपये प्रति वर्ग फीट की दर से विक्रय मूल्य प्रस्तावित किया था।"

इससे पता चलता है कि वास्तव में एक समय पर, आवेदिका अपनी संपत्ति अनावेदक को एक विशेष दर पर बेचना चाहती थी। इस संबंध में, पृष्ठ 3 के कंडिका–2 की अंतिम दो पंक्तियों में उसके कथन में आगे की स्वीकृति इस प्रकार है:

" अनावेदक संस्था, हायर ऐथार्टी सामने नहीं आते है और लोकल अथारिटी बहुत कम रेट में खरीदना मांग कर रहे थे।"

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

इस स्वीकारोक्ति से यह भी पता चलता है कि वास्तव में विक्रय की प्रस्तावित दर अनावेदक को स्वीकार नहीं थी और इस कारण विक्रय नहीं किया जा सका। पत्र प्र.डी.–4 के अनुसार यह वर्ष 1998 की घटना है। यदि हम इस साक्षी के साक्ष्य के पूर्व भाग पर गौर करें जिसमें आवेदिका के पुत्र ने अपनी पढ़ाई पूरी करने के पश्चात, आवेदन प्रस्तुत करने की तिथि से 8–10 वर्ष पूर्व, रेस्टोरेंट व्यवसाय प्रारंभ करने का निश्चय किया था, तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसा व्यवसाय प्रारंभ करने के लिए परिसर की आवश्यकता उस अवधि से ही विद्यमान थी और यदि उस अवधि के बीच परिसर के विक्रय के विषय में बातचीत हुई और विक्रय मूल्य के विवाद के कारण या अनावेदक के उच्च अधिकारियों द्वारा रुचि न लेने के कारण विक्रय नहीं हो सका, तो तत्पश्चात किसी अपदेश या बहाने से उसी परिसर की वास्तविक आवश्यकता के आधार पर बेदखली हेतु याचिका प्रस्तुत करना, यह आवेदिका की वास्तविक एवं सच्ची आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। इस न्यायालय की राय में, साक्षी (अ.सा. 1) की स्वीकारोक्ति को ध्यान में रखते हुए, यह स्पष्ट रूप से प्रतीत होता है कि जब प्रस्तावित दर पर बिक्री संभव नहीं हो सकी, तो केवल वास्तविक आवश्यकता का तर्क देकर बेदखली की मांग की जा रही है, जो वास्तविक आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। उपरोक्त दृष्टिकोण से स्वीकारोक्ति और साक्ष्यों की जाँच करते हुए, मैं स्वयं से यह प्रश्न पूछने के लिए विवश हूँ कि क्या मैं उक्त अधिनियम की धारा 23–ड. के अंतर्गत प्रदत्त अपने क्षेत्राधिकार का अतिक्रमण कर रहा हूँ? यद्यपि मैंने अपने आदेश के प्रारंभिक भाग में धन्नालाल प्रकरण (मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय का निर्णय, पूर्वोक्त) में दिए गए कानून का हवाला दिया है,

लेकिन मैं **दीना नाथ बनाम पूरन लाल JT 2001 (5) SC 380** के प्रकरण में सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए विधि का भी हवाला देता हूँ, जिसमें कहा गया है कि किसी अभिधारी को बेदखल करने के लिए न्यायालय/प्राधिकरण का कोई भी निर्णय/आदेश, जो यह नहीं दर्शाता कि न्यायालय/प्राधिकरण ने इन संविधिक आवश्यकताओं पर ध्यान दिया है, स्थिर नहीं रख जा सकता और अपील/द्वितीय अपील/पुनरीक्षण में ऐसे निर्णय/आदेश को रद्द करने में उच्चतर न्यायालय को न्यायोचित ठहराया जाए। प्रथम दृष्टि में, वास्तविकता की आवश्यकता एक तथ्यात्मक प्रश्न प्रतीत होती है। लेकिन इस प्रश्न पर निष्कर्ष दर्ज करते समय न्यायालय को संविधिक आदेश को ध्यान में रखना होगा। यदि यह पाया जाता है कि न्यायालय ने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्यों पर संविधिक प्रावधानों को उचित परिप्रेक्ष्य में लागू नहीं किया है, तो सद्भावना की आवश्यकता से संबंधित निष्कर्ष केवल तथ्यात्मक निष्कर्ष नहीं रह जाएगा, क्योंकि अवैध रूप से प्राप्त ऐसा त्रुटिपूर्ण निष्कर्ष पूरे निर्णय को दूषित कर देगा। ऐसे प्रकरण में, उच्च न्यायालय को सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के अधीन अपने द्वितीय अपीलीय क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए निष्कर्ष में हस्तक्षेप करने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इस निर्णय के कंडिका 14 में शिव सरूप गुप्ता प्रकरण (पूर्वोक्त) में प्रतिपादित विधि को भी उद्धृत किया गया है, जिसमें यह माना गया था कि पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय भाडा नियंत्रक के आदेश को इस कसौटी पर परखने के लिए बाध्य है कि "क्या यह विधि के अनुसार है। उस सीमित उद्देश्य के लिए वह साक्ष्य का पुनः विवेचन कर सकता है, अर्थात् यह पता लगाने के उद्देश्य से कि क्या भाडा नियंत्रक द्वारा निकाला गया निष्कर्ष पूरी तरह अनुचित है या ऐसा है जिस पर कोई भी यथोचित व्यक्ति, निष्पक्षता के साथ कार्य करते हुए, उपलब्ध साक्ष्य के आधार पर नहीं पहुंच सकता था।"

Web Copy High Court of Chhattisgarh Bilaspur

(13) उपरोक्त विधियों से मेरे विचार पुष्ट होते हैं कि आदेश की सत्यता की जांच करने और यह पता लगाने के सीमित उद्देश्य के लिए कि क्या भाडा नियंत्रण प्राधिकारी सही निष्कर्ष पर पहुंचा है या यह निष्कर्ष पूरी तरह अयुक्तियुक्त है, मैं साक्ष्य का पुनः विवेचन कर सकता हूं। ऊपर वर्णित तथ्यों का मुल्यांकन करने के बाद, मुझे पता चलता है कि आरसीए ने विधि के सही प्रावधानों पर ध्यान नहीं दिया है और सही निष्कर्ष पर नहीं पहुंचा है और इसने अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य की अनदेखी करते हुए एक सतही निष्कर्ष दर्ज किया है कि अभिधारी का परिसर भू–स्वामी द्वारा सद्भावनापूर्वक मांगा गया था और भू–स्वामी की आवश्यकता सही, उचित, वास्तविक और न्यायसंगत थी। मैं उक्त प्राधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष और याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा दिये गये तर्कों से सहमत नहीं हूं कि आरसीए ने गलत तरीके से माना है कि परिसर भू–स्वामी द्वारा सद्भावनापूर्वक मांगा गया था, इसे यथावत रखा जाता है।

(14) याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उक्त अधिनियम की धारा 23–छ के अनुपालन न करने के विषय में उठाए गए अंतिम बिंदु पर आते हुए, सबसे पहले, मैं कह सकता हूं कि चूंकि मैंने पहले ही माना

है कि आवेदिका की आवश्यकता वास्तविक नहीं थी और इस संबंध में निष्कर्ष उचित नहीं है, इसलिए मुझे इस प्रश्न पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है। हालांकि, मैं केवल यह लिखता हूं कि धारा 23–छ(2) में यह परिकल्पना की गई है कि जहां धारा 23–क के खंड (ख) में निर्दिष्ट आधार पर अभिधारी को बेदखल करने का आदेश दिया जाता है, भू–स्वामी आदेश की तिथि से 2 महीने की अवधि की समाप्ति से पहले उस पर कब्जा प्राप्त करने का हकदार नहीं होगा और यदि आवास इस उपधारा के उपखंड (ख) में उल्लिखित शहरों में स्थित है जिसमें रायपुर शहर शामिल है, जब तक कि भू–स्वामी अभिधारी को मुआवजे के रूप में ऐसी राशि का भुगतान नहीं करता है, जो आवास के वार्षिक मानक किराए की राशि के दोगुने के बराबर हो सकती है, उन मामलों में जहां आवास का उपयोग, उस तिथि से ठीक पहले के पूरे 10 वर्षों की अवधि के लिए किया गया है, जिस दिन भू–स्वामी उस पर कब्जे के लिए आवेदन करता है, बेदखल किए जा रहे अभिधारी द्वारा ऐसे उद्देश्य के साथ–साथ व्यावसायिक उद्देश्य या किसी अन्य उद्देश्य के लिए उपयोग किया गया है। अन्य खंड भी हैं। ऐसा दर्शित होता है कि आर. सी. ए ने इस प्रावधान पर विचार नही किया है तथा आदेश में इस संबंध में कोई उल्लेख नहीं किया है। मेरी राय में, इस प्रकरण में धारा 23–छ के आज्ञापक प्रावधानों का अनुपालन नहीं किया गया है, लेकिन मैं इसके अनुपालन न करने के परिणाम या पुनरीक्षण के चरण में इसके लिए उपाय पर विचार नहीं कर रहा हूं, क्योंकि जैसा कि ऊपर कहा गया है, मैंने पहले ही यह माना है कि आवेदिका की आवश्यकता वास्तविक नहीं थी और वह अभिधारी को बेदखल करने का आदेश प्राप्त करने की हकदार नहीं थी।

(15) परिणामस्वरूप, याचिका स्वीकार की जाती है। भाडा नियंत्रण प्राधिकारी द्वारा दिनांक 16.5.2005 को जारी आदेश एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है।

(16) तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, वाद व्यय के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया।

सही/–
सुनील कुमार सिन्हा
न्यायाधीश
20.07.2006

Web Copy
High Court of Chhattisgarh
Bilaspur

अस्वीकरणः हिन्दी भाषा में निर्णय का अनुवाद पक्षकारों के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा । समस्त कार्यालयीन एवं व्यवहारिक प्रयोजनों हेतु **निर्णय का अंग्रेजी स्वरुप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।**

Translated By .... Vijay Kumar Sahu , Advocate